खेजड़ी:
कीट व रोगों से सुरक्षा

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान,
जोधपुर 342 003
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)

मरू भूमि के कल्पवृक्ष खेजड़ी को राजस्थान में राज्य वृक्ष का दर्जा दिया गया है। परन्तु पिछले कुछ वर्षो से राज्य के कई जिलों में काफी संख्या में पेड़ असमय सूख रहे हैं। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान (काजरी) जोधपुर के वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधान में कीट (*अकैन्थोफोरस सिरैटिकॉर्निस)* तथा व्याधि (*गैनोडर्मा लुसिडम)* के सम्मिलित प्रकोप को समस्या का प्रमुख कारक चिन्हित किया गया। लटें जड़ों को खोखला करती हैं, जिससे संबद्ध शाखायें सूखती जाती हैं। *गैनोडर्मा* कवक वृक्षों की पोषक तत्व परिवहन प्रणाली को बाधित कर देती है, जिसके कारण भोजन के अभाव में पूरा वृक्ष सूखने लगता है तथा तने के निचले भाग में जमीन से एकदम ऊपर छतरीनुमा आकृति प्रकट होती है, जिसे स्थानीय भाषा में भंपोड़ कहा जाता है।

इसके अलावा कम वर्षा, अधिक भूजल दोहन के कारण भूमिगत जल स्तर में गिरावट, प्रति वर्ष की जाने वाली अत्यधिक छंगाई, ट्रेक्टर से खेजड़ी की उथली जड़ों को पहुँचने वाली क्षति, खेजड़ी के अपने आप उगने वाले पौधों का संरक्षण नहीं होना आदि अन्य कारणों से इसकी संख्या में दिनों दिन कम होती जा रही है।

खेजड़ी के असमय सूखने के प्रमुख कारक पता लगाने के पश्चात् काजरी द्वारा उसे बचाने के उपायों पर अध्ययन किये गये। अनुसंधान द्वारा ज्ञात हुआ कि *अकैन्थोफोरस* कीट के अण्डों से निकली नन्हीं लटों में निकलने के तुरन्त बाद जमीन में नीचे की ओर जाने की प्रवृत्ति होती है। जड़ में प्रविष्ट होने के पश्चात ये लटें उसके ऊतकों को अपना आहार बनाती हैं जिसके कारण जड़ खोखली हो जाती है। यदि एक जड़ में पर्याप्त खाद्य सामग्री नही मिल पाती है तो यह दूसरी जड़ में प्रवेश कर उसे भी हानि पहुँचाती है। कई बार यह ऊपर तने की ओर भी रुख कर सकती है। प्रभावित ऊतकों में उनका बुरादा तथा कीट का मल भरा रहता है। ये लटें इस लगभग वायु विहीन परिस्थिति में ही रहने की आदी होती हैं। पूर्ण विकसित होने के पश्चात, जब इनका आकार पॉच छह इन्च या इससे भी अधिक हो जाता है, ये जड़ में बडा सा छिद्र बना कर गहरी जमीन में जाकर प्यूपा में परिवर्तित हो जाती हैं। इस प्यूपा से बारिश के मौसम में वयस्क निकलते हैं जो जोड़ा बनाकर नया जीवन चक्र आरम्भ करते हैं।

सूखे हुए खेजड़ी के पेड़ को अक्सर जमीन से कुछ नीचे तक खोद कर निकाल लिया जाता है। परन्तु गहरी गयी जड़ों में लटें फिर भी सुरक्षित रह सकती हैं, अतः कुछ अधिक गहरायी तक खुदाई कर जड़े निकाल लेने से बची लटों को जड़ों के अन्दर से अथवा आसपास की मिट्टी से भी निकाला जा सकता है, जहॉं वे प्यूपा में परिवर्तित होने जाती हैं। ऐसा करने से इन कीटों का आगे प्रसार रोका जा सकता है।

लटों को नष्ट करने का अवसर दो अवस्थाओ में ही मिलता हैं एक तो जब वे अण्डों से निकल कर जड़ों की ओर जाती हैं और दूसरा जब वे जड़ों से निकल कर जमीन में प्यूपा बनने जाती है। एक बार जड़ में प्रविष्ट हो जाने के बाद बाहरी उपचारो से ये प्रायः अप्रभावित रहती हैं। वयस्क कीट अक्सर बारिश के मौसम में जोड़े बनाते हैं, जिसके बाद मादा भृंग गेहूँ के आकार के पीले रंग के अण्डे देती है, जिनमें से निकलने वाली छोटी लटें जमीन में नीचे की ओर जाती हैं। इनमें से कुछ तो परभक्षी जीवों द्वारा मार दी जाती हैं, बची हुई लटें जड़ों की ओर रूख करती हैं। इस समय या इससे कुछ पूर्व तने के आसपास कीटनाशक दवा के दाने यथा फोरेट डाल देने से नयी लटों को नष्ट किया जा सकता है। यही दवा जड़ों से बाहर आने वाली विकसित लटों के लिए भी प्रयुक्त की जा सकती है। रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैव कीटनाशकों का प्रयोग भी किया जा

सकता है। इसके लिये *मैटाराइज़ियम* नामक कीटशत्रु कवक का प्रयोग किया जा सकता है।

वयस्क कीटों को एकत्रित कर उन्हें नष्ट किया जा सकता है। वयस्क कीट काफी बड़े आकार के गहरे भूरे रंग के भृंग होते हैं, जो बहुधा रात में ही भ्रमण करते हैं, अतः उन्हें

इसी समय एकत्रित किया जा सकता है। भृंग एकत्रित करने के लिये प्रकाश पाश के समीप डेढ फीट गहरा गड्ढा खोदना होता है, जिसमें उन्हें फंसाया जा सके। इन भृंगों को हाथ से नहीं छूना चाहिये, क्योंकि इनके पंजे तथा मुखांग बहुत पैने और नुकीले होते हैं, जिससे घाव होने की संभावना रहती है। इन भृंगों को कुचल कर या जला कर नष्ट किया जा सकता है। खेतों में वृक्षों पर यदि भंपोड़ दिखायी दें, तो उन्हें तुरन्त हटा कर जला देना चाहिये। इससें उनका अन्य स्थानों पर प्रसार रुकेगा। ऐसा नहीं करने पर वर्षा जल के साथ कवक आसपास के पूरे क्षेत्र में फैलेंगे तथा अधिक वर्षा होने पर दूरस्थ स्थानों पर पंहुँच वहाँ नये वृक्षों पर स्थापित होंगे।

काजरी द्वारा किये परीक्षणों में गैनोडर्मा के रोगाणुओं को एक प्राकृतिक शत्रु कवक *ट्राइकोडर्मा* द्वारा आंशिक रुप से नियंत्रित होना पाया गया है। एक अन्य शत्रु कवक *एस्परजिल्लस टैरियस* भी परीक्षणों में इस रोग के विरुद्ध प्रभावी पाया गया। इन शत्रु कवकों द्वारा भूमि उपचार करने से खेजड़ी में भंपोड़ के रोगाणुओं को कम किया जा सकता है।

कीट व रोग के समन्वित प्रबंधन के लिये पेड़ों के नीचे की भूमि का कीट व फफूंद नाशक दवाओं से एक साथ उपचार किया जाना चाहिए, जिससे श्रम तथा लागत कम लगे।

भूमि उपचार के लिए पहले तने के चारों ओर इतना गहरा गड्ढा खोदा जाता है कि आड़ी जाने वाली जड़ों का निचला हिस्सा दिखायी देने लगे। इस गहराई पर फोरेट के दाने अथवा *मैटाराइज़ियम* कीटशत्रु कवक खाद के साथ मिला कर डाला जाता है। इसके ऊपर हटाई गयी मिट्टी की करीब छह इंच मोटी परत डाली जाती है। इसके बाद गोबर की खाद में मिलाकर *ट्राइकोडर्मा* या *एस्परजिल्लस टैरियस* डाला जाता है। इसके ऊपर मिट्टी की एक और परत डाली जाती है। अब गड्ढे को पानी से पूरा भर दिया जाना चाहिये। जब पानी पूरा सोख लिया जाये, तो खोदी गयी मिट्टी से इसे फिर से पूरा पाट दिया जाता है।

उपचार के एक अन्य तरीके में तने के नीचे पहले की तरह बनाये गड्ढे में उसी प्रकार कीटनाशक दवाएं डाली जाती हैं, किन्तु रोगनाशक दवा नहीं डाली जाती। ये दवाएं इस गड्ढे से एक एकाध मीटर बाहर की ओर करीब आधा मीटर गहरी खाई खोद कर उस में मिलाई जाती हैं। गड्ढे तथा खाई को पुनः पाट कर दोनो में पानी दिया जाता है, जिससे नमी बनी रहे।

अब तक के परीक्षणों में *एकैन्थोफोरस* कीट तथा *गैनोडर्मा* कवक के विरूद्ध प्रभावी इन उपचारों के उत्साहजनक परिणाम सामने आये हैं। यह अवश्य है कि इन उपचारों का असर तुरन्त नहीं होकर कुछ काल पश्चात होता है, क्योंकि कारक कीट तथा कवक दोनों का जीवन चक्र काफी लंबा होता है। प्रभावित वृक्षों को समय रहते चिह्नित कर उनका उपचार कर उन्हें सूखने से बचाया जा सकता है। इस कार्य में सभी लोगों का सहयोग अपेक्षित है, जिससे मरुभूमि का यह बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन फिर से लहलहा सके।

अधिक जानकारी के लिये पौध संरक्षण अनुभाग, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में सम्पर्क करें।